11.04.2020

B.A. I Philosophy (Hons)
1st Paper,

बौद्ध दर्शन के चार आर्य-सत्य

कुछ त्रिपिटक ग्रंथों से ज्ञात होता है कि तत्वशास्त्र के विषय (आत्मा, ईश्वर, विश्व, पुनर्जन्म, पाप, पुण्य, परलोक, मोक्ष आदि) प्रारम्भिक काल से ही विवादास्पद रहे हैं। प्रत्येक युग के विद्वानों, दार्शनिकों ने इन तात्विक प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास किया, परन्तु इस संदर्भ में कोई सफलता नहीं मिल पायी। ये प्रश्न प्रारम्भ की तरह आज भी उलझे हुए हैं। इन प्रश्नों का वास्तविक हल ढूँढ़ना मानव क्षमता से बाहर है। जो मनुष्य तर्क के जाल में प्रवेश करता है वह उसमें बुरी तरह फँस जाता है। गौतम बुद्ध विशुद्ध शास्त्रीय तथा तात्विक प्रश्नों पर स्वयं न तो कभी चर्चा करते थे और न तो दूसरों को ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। बल्कि इस तरह के प्रश्नों पर वे मौन हो जाते थे। बुद्ध के सामने सबसे बड़ी समस्या थी मनुष्य को दुःखों से छुटकारा दिलाना। उन्होंने महसूस किया विश्व में सर्वत्र दुःख ही दुःख है। यहाँ तक कि सुख भी दुःख मिश्रित है। बुद्ध को लगा कि संपूर्ण मानव समाज दुःखरूपी महासागर में डूबते जा रहा है। ऐसी स्थिति में उन्होंने तत्वशास्त्रीय प्रश्नों के हल में समय एवं शक्ति के अपव्यय को अनुचित समझा। इसके स्थान पर उन्होंने दुःख, दुःख के कारण, दुःख निरोध तथा दुःख निरोध मार्ग जैसे अधिक महत्वपूर्ण विषयों पर उपदेश दिया। बुद्ध की देशना उनके चार आर्य-सत्यों में समाहित है। ये चार आर्य-सत्य हैं— (01) दुःख है। (02) दुःख का कारण है। (03) दुःख निवृत्ति संभव है तथा (04) दुःख निरोध का मार्ग है।

(01) प्रथम आर्य-सत्य → दुःख है यह बुद्ध का प्रथम आर्य सत्य है। इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। "दीघनिकायसुत्त" में कहा गया है कि "जन्म दुःख है", रोग दुःख है, एवं मृत्यु जिसे हम नहीं चाहते हैं, इसकी प्राप्ति दुःख है। प्रियजनों से वियोग दुःख है, इच्छा की पूर्ति न होना दुःख है, आसक्ति दुःख है किन्तु इनमें दो अधिक भयानक हैं। ये हैं जरा (बुढ़ापा) और मृत्यु। यही कारण है कि बुद्ध ने विभिन्न प्रकार के दुःखों को "जरा-मरण" के नाम से पुकारा है। ये सभी आसक्ति से उत्पन्न होते हैं अतः ये सभी दुःख हैं। सिद्धार्थ राजपुत्र थे। उनके पास तमाम भौतिक ऐश्वर्य उपलब्ध थे, जिनकी हम कल्पना कर सकते हैं। उन्होंने इन सुखों की वास्तविकता को निकट से देखा तथा पाया कि इनसे केवल क्षणिक सुख ही मिलता है, जो कालान्तर में एक विचित्र रिक्तता तथा विषाद ही उत्पन्न करता है।

बुद्ध के प्रथम आर्य-सत्य का समर्थन पाश्चात्य विचारक शोपेन हावर के दर्शन में मिलता है। शोपेन हावर ने भी जीवन को अत्यन्त दुःखमय बताया है। उनके

अनुसार "यह विश्व अन्य सभी विश्वों से बदतर है।"

अब इस प्रथम आर्य सत्य में निहित व्यावहारिकता की बात करें तो पायेंगे कि बुद्ध का जीवन के दुःख पर बल देना जीवन का सप्रयोजन तथा करुणावश था। इसमें उनका एक ही उद्देश्य था, जो इस तथ्य के प्रति सचेत हों वे इसे दूर करने के मार्ग पर चलें।

(02) द्वितीय आर्य सत्य या द्वादश निदान →

द्वितीय आर्य-सत्य है कि दुःख का कारण है। बौद्ध दर्शन में दुःख के उत्पत्ति का सिद्धान्त "प्रतीत्यसमुत्पाद" कार्य-कारण सिद्धान्त पर आधारित है। प्रतीत्यसमुत्पाद दो शब्दों के योग से बना है, "प्रतीत्य" और "समुत्पाद"। प्रतीत्य का अर्थ है किसी वस्तु के उपस्थित होने पर और समुत्पाद का अर्थ है किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। इस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद का शाब्दिक अर्थ है एक वस्तु के उपस्थित होने पर किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति। इस सिद्धान्त के अनुसार कोई वस्तु न तो शाश्वत है और न ही पूर्णतया नश्वर। प्रतीत्यसमुत्पाद को मान लेने पर दुःख के कारण को मानना भी आवश्यक हो जाता है। बौद्ध दर्शन में दुःख के कारण के रूप में बारह कड़ियों को माना गया है। इसलिए इसे "द्वादश-निदान" भी कहा गया है। इन कड़ियों के दो छोर हैं। एक छोर पर दुःख तथा दूसरे छोर पर अविद्या है। यहाँ दोतरफा प्रस्थान कर सकते हैं। यानि कारण से कार्य तथा कार्य से कारण की तरफ प्रस्थान किया जा सकता है। कारण से कार्य की ओर प्रस्थान → दुःख का मूल कारण अविद्या है। अविद्या का अर्थ है- अज्ञान। वास्तविक-अवास्तविक, जीव-अजीव के अन्तर तथा संबंध को न समझना अविद्या से बुरी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं जिन्हें संस्कार कहा जाता है। पूर्व जन्मों के सभी कर्मों के प्रभाव से संस्कार बनते हैं। संस्कार के कारण एक प्रारम्भिक चेतना जगती है जिसे विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान के कारण गर्भ में शरीर बनता है जिसे नामरूप कहते हैं। शरीर बनने पर उसमें छः इन्द्रियाँ भी आती हैं जिसे "षडायतन" कहा जाता है। इन्द्रियाँ रहेंगी तो इन्द्रिय तथा वस्तु में सम्पर्क भी होगा जिसे स्पर्श कहा जाता है। जब इन्द्रिय से वस्तु का सम्पर्क होगा तो इन्द्रिय सुख का अनुभव भी मिलेगा जिसे वेदना कहते हैं। इन्द्रिय सुख से उपभोग की इच्छा जगती है जिसे

तृष्णा कहते हैं। उपभोग की इच्छा अर्थात् वस्तुओं से चिपके रहने की प्रवृत्ति वस्तुओं के प्रति आसक्ति उत्पन्न करती है जिसे उपादान कहते हैं। उपादान से जन्म लेने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है जिसे भव कहते हैं। और तब जाति भी होगी और जन्म लेने से दुःख अर्थात् जरा-मरण भी होगी। इस प्रकार दुःख का कारण बारह कड़ियों वाला चक्र है। इसे द्वादश निदान, भव-चक्र, संसार-चक्र, धर्म-चक्र आदि भी कहते हैं। इनमें दुःख तथा अविद्या सदा साथ रहते हैं। द्वादश निदान भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् जीवनों में व्याप्त है। वर्तमान जीवन का कारण अतीत जीवन है और वर्तमान जीवन का प्रभाव भविष्य जीवन पर पड़ता है। संपूर्ण द्वादश निदान को हम भूत, वर्तमान तथा भविष्य जीवन अर्थात् तीनों कालों में विभक्त कर सकते हैं। इस सिद्धान्त का मूल कारण ध्येय हमारे जीवन में व्याप्त दुःखों के कारण का पता लगाकर हमें दुःखों से परे ले जाना है। बुद्ध ने द्वादश निदान के द्वारा हमारे समस्त दुःखों के कारण का अन्वेषण किया तथा अविद्या को हमारे समस्त दुःखों के मूल कारण के रूप में स्थापित किया।

(03) **तृतीय आर्य-सत्य** — तृतीय आर्य सत्य है कि दुःख निवृत्ति संभव है। द्वितीय आर्य-सत्य में दुःखों का कारण बतलाया गया है। हम जानते हैं कि यदि दुःखों का ~~सत्~~ कारण न रहे तो कार्य भी न रहेगा। तो यदि किसी प्रकार दुःखों के कारणों का नाश हो जाय तो दुःख भी नष्ट हो जाएगा। दुःख का मूल कारण है अविद्या, इसी के कारण संस्कार आदि बनते हैं। यदि अविद्या, संस्कार आदि का नाश हो जाय तो दुःखों का पूर्ण नाश संभव है। उनका कहना है कि दुःखों का पूर्ण विनाश हो सकता है और इस अवस्था को "निर्वाण" कहते हैं। अपने तृतीय आर्य-सत्य में बुद्ध इसी "निर्वाण" का वर्णन करते हैं।

निर्वाण के भावात्मक तथा अभावात्मक दो पहलू हैं। अभावात्मक रूप में निर्वाण का अर्थ दुःखों का नाश, जन्म-मरण के चक्र का अंत तथा वासना, द्वेष एवं दुष्कर्म की अग्नि का बुझ जाना। भावात्मक रूप में निर्वाण एक शान्ति की अवस्था है। निर्वाण की प्राप्ति जीवन में हो सकती है। बुद्ध स्वयं इसके उदाहरण हैं। बुद्ध निर्वाण का कोई भावात्मक वर्णन नहीं देते। इन्होंने कभी इसे आनन्द अथवा सुखद अवस्था में निर्दिष्ट करने की कोशिश नहीं की। बुद्ध आनन्द की बात नहीं करते, दुःख निरोध की बात करते हैं। बुद्ध कहते हैं कि आनन्द की बात करने की जरूरत ही नहीं है। बस दुःख पैदा करने के आयोजन छोड़ दो; आनन्द तो पैदा हुआ ही है। आनन्द तो तुम्हारा स्वभाव है ——— ——— दुःख के कारण दिखलाई नहीं पड़ता। इस तरह बुद्ध तृतीय आर्य-सत्य के द्वारा हमें इस संभावना के प्रति जागरूक करने

चेष्टा करते हैं जो दुःखों से परे है।

(04) चतुर्थ आर्य-सत्य — चतुर्थ आर्य-सत्य दुःख निरोध का मार्ग है। दुःख निरोध के मार्ग को बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग कहा है। अष्टांगिक इसलिए कि इस मार्ग में आठ चरण हैं—

(I) सम्यक्-दृष्टि — अविद्या के कारण आत्मा तथा संसार के संबंध में मिथ्या दृष्टि की उत्पत्ति होती है जिसके फल स्वरूप हम अनित्य को नित्य, दुःख को सुख तथा अनात्म को आत्मरूप समझने लगते हैं। इस दृष्टि को त्यागकर वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप पर सतत् ध्यान रखना ही सम्यक् दृष्टि है।

(II) सम्यक्-संकल्प — आर्य-सत्यों के ज्ञान मात्र से कोई लाभ नहीं हो सकता, जब तक उसके अनुसार जीवन बिताने का संकल्प या दृढ़ इच्छा न की जाय। जो निर्वाण चाहते हैं उन्हें सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति, दूसरों के प्रति विद्वेष तथा हिंसा इन तीनों का परित्याग करने का संकल्प करना चाहिए।

(III) सम्यक्-वाक् — सम्यक्-वाक् के अंतर्गत हमें अपने वचन पर नियंत्रण रखते हुए मिथ्यावादिता, निंदा, अप्रिय तथा वाचालता से बचना चाहिए।

(IV) सम्यक्-कर्मान्त — अर्थात् सम्यक्-संकल्प को केवल वचन में ही नहीं बल्कि कर्म में भी परिणत करना चाहिए। अहिंसा, अस्तेय तथा इन्द्रिय संयम ही सम्यक्-कर्मान्त है।

(V) सम्यक्-आजीव — बुरे वचन तथा बुरे कर्म के परित्याग के साथ-साथ मनुष्य को शुद्ध उपाय से जीविकोपार्जन करना चाहिए। जीविका निर्वाह के लिए उचित मार्ग का अनुसरण तथा निषिद्ध उपाय का वर्जन करना चाहिए। ऐसा करने से संकल्प शुद्ध होता है।

(VI) सम्यक्-व्यायाम — निर्वाण पथ पर अग्रसर होने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना आवश्यक है। मस्तिष्क में बुरे विचारों को रखकर कोई निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता है। बुरे विचारों को निकालकर अच्छे विचारों को भरना आवश्यक है। यहाँ मानसिक शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है।

(VII) सम्यक्-स्मृति — सीखे हुए विषयों का सतत् स्मरण रखना आवश्यक है। बौद्ध दर्शन में कहा गया है कि निर्वाण-पथ के पथिक को सतत् स्मरण रखना चाहिए कि शरीर-शरीर है तथा मन मन है। हमें इस बात का सदैव स्मरण रखना चाहिए कि शरीर पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि ~~[illegible]~~ से बना है। इस शरीर में हाड़, मांस, रक्त, कफ, पित्त आदि घृणित पदार्थों की मात्रा है। शरीर नश्वर एवं क्षणिक है।

(viii) सम्यक्-समाधि — उपर्युक्त सात नियमों के अनुसार चलकर जो अपनी बुरी चित्त-वृत्तियों को दूर कर लेता है, वह सम्यक्-समाधि में प्रवृष्ट होने योग्य हो जाता है और क्रमशः चार अवस्थाओं को प्राप्त कर निर्वाण की प्राप्ति कर लेता है। प्रथमतः वह शान्त चित्त से आर्य-सत्यों का वितर्क तथा विचार कर सकता है। वितर्क तथा शुद्ध विचार के कारण वह अपूर्व आनन्द तथा शान्ति का अनुभव करता है सम्यक् समाधि या ध्यान की यह प्रथम अवस्था है। यह समाधि प्राप्त हो जाने से समस्त प्रकार के संदेह दूर हो जाते हैं तथा आर्य-सत्यों के प्रति श्रद्धा बढ़ती है। वितर्क तथा विचार अनावश्यक हो जाते हैं, तब समाधि की दूसरी अवस्था प्रारम्भ होती है। इस अवस्था में प्रगाढ़ चिन्तन के कारण शान्ति तथा चित्त-स्थिरता का उदय होता है। इस अवस्था में शान्ति तथा आनन्द साथ-साथ रहता है। समाधि की तीसरी अवस्था में आनन्द तथा शान्ति की चेतना तो रहती है परन्तु आनन्द के प्रति उदासीनता उत्पन्न हो जाती है। आनन्द की चेतना निर्वाण प्राप्ति के मार्ग में बाधक सिद्ध होती है, इसलिए इसका यहाँ अभाव हो जाता है। समाधि की अंतिम अवस्था में आनन्द एवं शान्ति की चेतना का भी अभाव हो जाता है। यह अवस्था पूर्ण शान्ति, पूर्ण विराग एवं पूर्ण दुःख विनाश का है। यहाँ चित्त-वृत्तियों का पूर्ण अभाव हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर साधक "अर्हत" बन जाता है। यह सुख-दुःख से परे की अवस्था है।

डा० सन्तोष कुमार सिंह
विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र,
अनजबित सिंह महाविद्यालय,
बिक्रमगंज (रोहतास)।
दिनांक- 11.04.2020